IJARSCT

ISSN (Online) 2581-9429

International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)

Impact Factor: 6.252

Volume 3, Issue 1, January 2023

अद्वैत वेदान्त में माया का स्वरूप

मनीष प्रसाद गौतम[1], डॉ. बृजेश नाथ ओझा[2]

शोधार्थी (संस्कृत) शास. ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)[1]

आचार्य एवं विभागाध्यक्ष–संस्कृत, श्रीयुत महाविद्यालय गंगेव, जिला–रीवा (म.प्र.)[2]

शोध–सारांशः

शंकराचार्य का प्रमुख सिद्धांत अद्वैतवाद या ब्रह्मवाद है; किंतु ये ब्रह्मवादी की अपेक्षा मायावाद के प्रस्थापक के रूप में विशेष रूप से जाने जाते हैं। इस प्रकार यदि मायावाद को शंकराचार्य का प्रमुख प्रतिपाद्य कहा जाय, तो अनुचित न होगा। शांकर वेदांत की प्रमुख देन माायावाद है। इसका कारण यह है कि, यों तो ब्रह्मवाद की स्थापना उपनिषदों में हो चुकी थी, किन्तु जगत् की स्थिति का निर्धारण उपनिषदों में सम्यक रूप से नहीं हो सका था। यहाँ यह कथन संगत होगा कि जगत् के स्वरूप के निश्चय के बिना अद्वैवसिद्धि कदापि संभव न थी। सैद्धांतिक पूर्णता की दृष्टि से शंकराचार्य के पूर्वकाल में जगत् की स्थिति असिद्ध ही बनी रही। आचार्य शंकर ने इस न्यूनता की पूर्ति की थी। प्रस्तुत शोध पत्र में मायावाद की स्थापना के द्वारा जगत् को मायिक कहकर एक ओर जगत् की व्यावहारिता का प्रतिषेध किया तथा दूसरी ओर पारमार्थिक दृष्टि से जगत् के मिथ्यत्व के प्रतिपादन के द्वारा अद्वैतवाद या ब्रह्मवाद की निष्पत्ति से सम्बन्धित बिन्दुओं को आलेख में विवेचित करने का प्रयास है।

मुख्यशब्दः अद्वैत वेदान्त,माया, स्वरूप, व्यावहारिता, अद्वैवसिद्धि, पारमार्थिक, ब्रह्मवाद श्वेताश्वतरोपनिषद, ईश्वर

प्रस्तावनाः

माया सिद्धांत का प्रतिपादन शंकराचार्य ने ही अपने भाष्य ग्रंथों में किया है। किंतु इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग ऋग्वेद[1] के मंत्र के अंतर्गत मिलता है; यहाँ 'माया' शब्द का प्रयोग इंद्र की ऐन्द्रजालिक शक्ति एवं कपटार्थ शक्ति के लिये किया गया है। आगे उपनिषदों में भी इस शब्द का व्यवहार मिलता है। निदर्शनार्थ प्रश्नोपनिषद् में इस अर्थ में 'माया' शब्द व्यवहृत है; किंतु श्वेताश्वतरोपनिषद् में माया का अर्थ प्रकृति है। शंकर ने भाष्य करते हुए 'ईश्वरस्य मायाशक्तिः प्रकृतिः' कहकर माया को प्रकृति तथा ईश्वर की शक्ति कहा है। श्रीमद्भगवद्गीता के अंतर्गत माया का प्रयोग या तो ईश्वर की शक्ति के अर्थ में किया गया है, या त्रिगुणात्मक प्रकृति के अर्थ में।[2] वेदांत दर्शन के मूलाधार ब्रह्मसूत्र के अंतर्गत माया शब्द का प्रयोग केवल एक स्थल पर हुआ है और वह भी स्वप्निल प्रपंच के अर्थ में।

सैद्धांतिक दृष्टि से गौड़पादाचार्य के माया संबंधी विचार के अंतर्गत शांकर मायावाद की पृष्ठभूमि देखने को मिलती है। किंतु गौड़पादकारिका[3] में माया शब्द का व्यवहार जहाँ अज्ञात एवं परमात्मा की शक्ति के अर्थ में हुआ है; वहाँ स्वप्न के अर्थ में भी इस शब्द का प्रयोग देखा जाता है। माया का स्वप्न के अर्थ में प्रयोग शांकर वेदांत के लिये एक समस्या उत्पन्न कर देता है, क्योंकि आचार्य शंकर ने माया एवं मायिक जगत् को सर्वथा स्वप्न न स्वीकार करके उसकी अनिर्वचनीयता के कारण व्यावहारिक सत्ता को निश्चित रूप से स्वीकार किया है। अतः जगत् की स्वप्नमात्रता का गौड़पाद का सिद्धांत शंकराचार्य को स्वीकार नहीं है। क्योंकि वे जगत् के संबंध में व्यावहारिक स्तर के पक्ष पाती हैं।

Copyright to IJARSCT
www.ijarsct.co.in

DOI: 10.48175/IJARSCT-7899

माया का अर्थ

माङ् धातु से बने 'माया' शब्द का अर्थ है – ज्ञान सामान्य[4] इसका व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ है– जिससे जगत् का निर्माण होता है वह माया है[5] अथवा जिससे आत्माध्यस्त जगत् जाना जाय वह माया है।[6]

वेदांतमत में माया जगत् का उपादान कारण है। माया के अभाव में ब्रह्म क जगत्कर्तृत्व असंभव है ब्रह्म अपनी इसी शक्ति से जगत् रचना में सक्षम होता है। माया का मूल रूप हमें ऋग्वेद से ही मिलना प्रारंभ हो जाता है जो क्रमशः उपनिषदों में और अधिक स्पष्ट हो अद्वैत वेदांत में मायावाद के रूप में सजीव हो उठता है। किंतु माया का स्वरूप सर्वत्र उसी रूप में (कपट, अनेक, तम, रात्रि) उपलब्ध होता है।

यास्क मुनि[7] तथा स्कंदस्वामी, वेंकटमाधव, मुद्गल तथा सायणाचार्यकृत भाष्यों में सर्वत्र 'माया' शब्द का अर्थ प्रज्ञा या 'प्रज्ञान' ही किया गया है।[8]–

हे इन्द्र त्वं मायिनं नानाविध कपटोपेतं भूतानां शोषणहेतुमसुरम् मायाभिः तत्प्रतिकूलैः कपटविशेषैश्वारितः हिंसितवानसि। मुद्.भा., 1.11.7.

यह माया वृत्रादि असुर–पक्ष के साथ भी है और एक से अनेक होने वाले देव (इंद्र–मित्रावरुण) की अनेकरूपता की व्याख्या भी बनी है। यहाँ माया के अर्थ में मोहन भी जुड़ गया।[9]

ये सब अर्थ समन्वित होकर वेदांत की 'माया' का उत्स बने। माया और मायावी का अभेद संबंध रहते हुए माया एवं उसके कार्य की पृथक सत्ता न होना अद्वैत का साधक स्तंभ बना है।

माया का प्रारंभिक–रूप

वृहदारण्यकोपनिषद् भाष्य में माया के प्राचीन अर्थ 'प्रज्ञा की व्याख्या' 'नामरूप उपाधि–जनित मिथ्याभिज्ञान' तथा 'अपरमार्थ अविद्यात्मक प्रज्ञा' कहर कर दी गई है।[10] ऋकसंहिता में उसे 'तमस' या 'रात्रि' नाम भी दिये गये हैं।[11] इससे यह विदित होता है कि 'प्रकाशस्वरूप मूलतत्व (एक देव)[12] से सर्वथा विपरीत होना ही उस द्वितीय तत्व का विचार्यमाण स्वरूप था। इस तमस का सत्य वस्तु होना 'देव' के 'एक' होने में बाधक था और असत्य होने पर व्यवहार–जगत् का मर्म नहीं समझ में आता था, इसलिए वह तमस सत्य व असत्य दोनों से पृथक (विलक्षण) ही है, ऐसी मीमांसा ऋग्वेद में ही हो चुकी है, एवं जड़ जगत् का सारा उत्तरदायित्व उसी पर सौंप देने की भावना वहीं आरंभ हो गई है।[13]

इसी सूक्त में 'तम् आसीत्' शब्दों से ब्रह्मज्योति से विपरीत वस्तु में 'अस' (होना) का योग उस वस्तु के भावात्मक होने में प्रमाण है; किन्तु साथ ही उसे तुच्छ (अविद्यमान) भी बताया है तथा उसे सत् असत् दोनों से पृथ भी कहा गया है। इससे उस 'तमस' के स्वरूप की तीन विधायें प्राप्त होती हैं –

1. अस धातु के प्रयोग के योग्य होने से भावरूपता,
2. 'तुच्छ' से अभिहीत होने से अविद्यमानता,
3. सत् तथा असत् दोनों से पुथक (विलक्षण) होना।[14]

इसी नासदीय सूक्त के सायणभाष्य में अद्वैतसिद्धान्तानुरूप शब्दावली में ही अज्ञान की भावरूपता एवं सदसद्विलक्षण–अनिर्वचनीयता निरूपति हुई है। तथा यह भी स्पष्ट किया गया है कि माया ही अनिर्वाच्य है, ब्रह्म की सत्ता है। उपनिषद् में वह तत्व 'अव्यक्त', अज्ञान, प्रकृति, माया, अविद्या, तमस इत्यादि अनेक नामों से चर्चित हुआ है तथा वह मूलतत्व की एक शक्ति है जो एक रूप में भी कार्य करती है, अनेक रूपों में।[15] वही एक अद्वितीय तत्व की नानात्मक प्रतीति का तथा जगत् की संभावना का मूल है।[16]

उस वस्तु को 'क्षर' संज्ञा देकर उसक अंतवत्व, अस्थायित्व सूचित किया गया है तथा अन्य अनेक वचनों से उसका कुछ 'होना' (भावरूपता) भी कहा गया है।[17]

गौड़पादोक्त माया

गौड़पाद ने माण्डूक्यकारिका में अज्ञान का उल्लेख इस प्रकार किया है। जिस प्रकार मंद प्रकाश में दूसर से दिखाई देती हुई पृथ्वी पर पड़ी रज्जु में रज्जु होने का निश्चय न होने की दशा में भूछिद्र या सर्प आदि होने की कल्पना की जाती है; वैसे ही स्वरूपतः अज्ञात या भली प्रकार न जाना हुआ आत्मा अनंत जीव–जगत् आदि भावों से विकल्पित हो रहा है। यह विकल्पना प्रकाशस्वरूप परमत्व की माया (समझ में न आने वाला खेल) ही है, जिससे वह स्वयं विमोहित–सा हो रहा है।[18] अर्थात् विमोह, विकल्पना वस्तु के स्वरू‍ को यथार्थ से विपरीत–सा कर देना ही माया का स्वरूप है।

योगवाशिष्ठकार मत में माया का स्वरूप

योगवाशिष्ठ में माया का स्वरूप 'आत्मतत्व का अदर्शन' कहा गया है, एवं उसके मिथ्यात्व और अविद्यमानता पर विशेष बल दिया है।[19] वह वस्तुतः कहीं भी स्थित नहीं, पर दिखती है सर्वत्र, निमिष भर भी उसकी स्थिति नहीं, पर चिरैस्थर्य की आशंका उत्पन्न किये हुए है। मृगमरीचिका, मनोराज्य, इंद्रजाल के तुल्य ही अविद्या का स्वरूप है। ऐसी ही वह निखिल संसार का बीज है।[20] बारंबार उसे असत् रूप और अवस्तु कहा गया है। इस शब्दों का नञ (अकार) सद् या वस्तु से विलक्षणता का बोधक है, अभावरूपता का नहीं। वह कुछ हे ही नहीं जो नष्ट हो।[21] किंतु उसे अभावरूपा कहना भी दुष्कर है; क्योंकि असत् का होना नहीं देखा जाता और अविद्या ठीक अविद्या रूप से देखी न जाने पर भी उसका कार्य जगत् तो मोक्ष पूर्व तक सभी को दिखाई देता है।[22] अभाव से भावोत्पत्ति होती नहीं और जगदुत्पत्ति हो रही है।

शंकर मत में माया का स्वरूप

आचार्य शंकर ने शारीरकभाष्य में निर्गुण, निष्क्रिय ब्रह्म में जगत् के उत्पादकत्व की उपपादिका रूप में ही अविद्या का प्रतिपादन किया है, एवं उसे निखिल सृष्ट वस्तु की बीजशक्ति कहा है। यह बीजशक्ति अव्यक्त है। वह सद्रूप है या असद्रूप, ब्रह्म से भिन्न है या अभिन्न किसी भी प्रकार उसका निरूपण नहीं किया जा सकता। अतः वह अव्यक्त है। अर्थात् न उसे सत् कह सकते हैं, न ही असत्, इन दोनों से विलक्षण ही किसी भावरूप से वह महासुषुप्तिरूपा है जिसमें स्वरूपज्ञानरूपी प्रतिबोध से रहित संसारी जीव सोये हुए हैं।[23]

संदर्भ स्रोतः

[1]. इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते। (ऋ.सं. 6;18)।

[2]. दैवीह्योष गुणमयी मम माया दुरत्यथा।

[3]. प्रकृतिं स्वा मधिटम्य मम माया तरन्ति ते।। –गीता।

[4]. अनादि मायया सुप्तो यदा जीवः प्रबुद्धयते। – गौ.का. 11/20।

[5]. माङ्धातोर्ज्ञानसामान्यमर्थः। – रामेश्वर प्रसाद उपाध्याय माया स्वरूप विमर्शः प्रज्ञा। – 1970।

[6]. मीयते (निर्मीयते) जगद् यया सा माया। – वही, पृ. 192।

[7]. यद्वा मीयते (ज्ञायते) आत्मन्यधस्तं जगत् यया सा माया। – वही।

[8]. निधष्टु 3/9।

[9]. मायाभिः प्रज्ञभिः। हेइन्ड। मायिनमतिसंधानप्रज्ञायुक्तम्....। स्कन्दभन, ऋ.1/11/2।

[10]. वसंत आच्छादयत्तिं मायया स्वप्रज्ञया। –मुद्.भा.ऋ 5/63/7।

[11]. रूपं रूपं मधवा बोभवीति मायाः कृण्वानस्तवं परिस्वाम्। –ऋ.सं. 6/55/8।

[12]. परमेश्वरो मायाभिः प्रज्ञाभिः नामरूपभूतकृतामिथ्याभिमानैर्वा, न तु परमार्थतः, पुरुरूपो बहुरूप ईयते गम्यते, एकरूप एव प्रज्ञानधनः, सन् अविद्याप्रज्ञाभिः। –बृह.उ., शां.भा., 2/5/19।

[13]. रात्री व्यख्यदायती पुरुत्रा देव्यक्षभिः। –ऋ.सं. 10/127/1।

[14]. यो देवनां नामधा एक एव...। –ऋ.सं. 10/2/3।

[15]. एको देवः सर्वभूतेषु गूढः....। – श्वे. 6/11।

[16]. नासदासीन्नो सदासीत तदानीं ....। –ऋ.सं. 10/129।

[17]. अद्वैवतेदांत में तत्व और ज्ञान : द्वितीय परिच्छे, अवद्यिा अथवा माया, पृ. 57, उर्मिला शर्मा।

[18]. आमेकां लोहितशुक्ल... 0।– श्वे0 4/5; इंद्रोमायाभिः पुरुरूप....0।– बृह.उ. 2/4/19।

[19]. अस्मान्मायी सृजेत् विश्वमेतत्....0। –श्वे 4/9।

[20]. क्षरं प्रधानम्.....। संयुक्तमेतत् क्षरमक्षरं च। –श्वे 1/10 (पहला) वही 1/8। (दूसरा)।

[21]. अनिश्चिता यथा रज्जुन्धकारो विकल्पिता। सर्पधारादिभिर्भावैस्तद्वदात्मा विकल्पितः।।

[22]. प्राणादिभिरनन्तैश्च भावैरेतैर्विकल्पितः। मायैषा तस्य देवस्य यया सम्मोहितः स्वपम्।। – मा.का. 2/17,19।

[23]. मायेयं स्वानषद् भ्रान्तिर्मिथ्यारचितचक्रिका। मनोराज्यभिवालोलसलिलावर्त्तसुंदरी। –यो.वा. 4/47/41।

[24]. संसारबीजकणिका यैषाऽविद्या रधूद्वह। एषा ह्यविद्यमानैव सतीव स्फरतां गता न क्वचित् संस्थितापीह सर्वत्रैवोपलक्ष्यते। – स्यो.वा. 3/113/17,

[25]. इयं दुश्यभरभ्रांतिर्नन्वविद्येति चोच्यते। वस्तुतो विद्यते नैषा तापदद्यां यथा पयः। –वही 6/2/52/5।

[26]. मनोराज्यमिवाकारभासुरा सत्यवर्जिता। सहस्रशताशारवापि न किन्चित् परमार्थतः।। – वही, 3/113/33।

[27]. नासतो विद्यतेभावो नाभावा विद्यते सतः।

[28]. यत्तु वस्तुत एवास्ति न कदाचन किन्चन। तदभावात्म तद्राम कथं नाम विनश्यति।।– यो.वा. 6/2/3/11–12।

[29]. अविद्यात्मिका हि बीज शक्तिरव्यक्त ... ओतश्च प्रोतश्च। – बृह.उ. 3/8/4, क्वचिदक्षरशब्दोदितम् अक्षरात्परतः परः (यु.उ. 2/1/2)..... मायातु प्रकृतिं विद्यात् (श्वे 4/10) अव्यक्ता हि सा माया तत्वान्यत्वनिरूपणस्य अशक्यत्वात्।। – ब्र.शां.भा. 1/4/3, पृ. 288।